ॐ श्री कृष्ण शरणम् मम ॐ

卐 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक तेरहवाँ अध्याय 卐

ठाकुर भिम सिंह द्वारा प्रस्तुत
श्रीमद्भगवद्गीता अमृत
श्लोकों के गूढ़ रहस्यों के साथ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक १ - **इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्य भिधीयते**
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! 'यह' रूप से कहे जानेवाले शरीर को "**क्षेत्र**" नाम से कहते हैं, और इस क्षेत्र को जो जानता है, उसको ज्ञानी लोग "**क्षेत्रज्ञ**" नामसे कहते हैं ।

The Supreme Divine Lord said: O Arjun, this body is termed as *kṣhetra* (the field of activities), and the one who knows this body is called *kṣhetrajña* (the knower of the field) by the sages who discern the truth about both.

मार्मिक बात (Important Point) :-

स्थूल शरीर - पञ्च तत्त्वों से बना इस शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं । जाग्रत अवस्था में स्थूलशरीर की प्रधानता होती है, यदपि उस में सुक्षम तथा कारण शरीर भी साथ में रहते हैं ।

The mass or gross body is made up of five elements namely Earth, Water, Air, Heat/fire and Sky or Space. In wakeful state, there is predominance of gross body, and it is accompanied by subtle body and casual body as well.

सूक्षम शरीर - इस शरीर रूपी क्षेत्र में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि - इन सत्रह तत्त्वों से बने हुए को '**सूक्ष्म**' शरीर कहते हैं । स्वपन्न अवस्था में सुक्षमशरीर की प्रधानता होती है और उस में कारण शरीर भी साथ में रहता है ।

The subtle body consists of five sense organs, five organs of actions, five life-breaths, mind, and intellect. In dream there is predominance of subtle body which is accompanied by casual body.

कारण शरीर - अज्ञता के कारण इसे कारण शरीर भी कहा जाता । मनुष्य को बुद्धि तक ही का ज्ञान होता है, पर बुद्धि से आगे का ज्ञान नहीं होता । इसलिये इसे "**अज्ञान**" कहते हैं । सुषुप्ति अवस्था में स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं रहता जोकि अन्नमय कोश है और सूक्ष्मशरीर का ज्ञान भी नहीं रहता जोकि प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोश है, अर्थात् बुद्धि अविद्या अज्ञान में लीन हो जाती हैं । अतः, सुषुप्ति अवस्था कारण शरीर की होती है ।

The Casual body is called **Ignorance**. A man's knowledge can have access up to intellect only. Whatever is beyond intellect, is not open to knowledge. So, it is called '**Ignorance**.' In sound sleep, there is predominance of casual body and a person is neither aware of the gross body nor of the subtle body. Intellect merges in ignorance. Therefore, sound sleep is a state of casual body.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम ॥२॥

हे भरतवंशी अर्जुन, मुझे तुम सभी क्षेत्रों का क्षेत्रज्ञ (**नायक या चलानेवाला**) जानो. मेरे मत से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है. (१३.०२)

BG 13.2: O scion of Bharat, I am also the knower of all the individual fields of activity. The understanding of the body as the field of activities, and the soul and God as the knowers of the field, this I hold to be true knowledge.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

तत् क्षेत्रं यच् च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु ॥३॥

क्षेत्र क्या है, कैसा है, इनके स्रोत कहां है, इनकी विभूतियां क्या हैं; तथा क्षेत्रज्ञ क्या है, उसकी शक्तियां क्या हैं, वह सब संक्षेप में सुनो. (१३.०३)

BG 13.3: Listen and I will explain to you what that field is and what its nature is. I will also explain how change takes place within it, from what it was created, who the knower of the field of activities is, and what his powers are.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ऋषिभिर् बहुधा गीतं छन्दोभिर् विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर् विनिश्चितैः ॥४॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विषय में ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से बताया गया है तथा नाना प्रकार के वेदमंत्रों और ब्रह्मसूत्र के युक्तियुक्त पदों द्वारा भी विस्तारपूर्बक कहा गया है. (१३.०४)

BG 13.4: Great sages have sung the truth about the field and the knower of the field in manifold ways. It has been stated in various Vedic hymns, and especially revealed in the Brahma Sūtra, with sound logic and conclusive evidence.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ५ - महाभूतान्यहङ्कारो, बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इद्रियाणि दशैकं च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥

मूल प्रकृति और समष्टि बुद्धि (महातत्त्व), समष्टि अहंङ्कार, पाँच महाभूत और दस

इन्द्रियाँ, एक मन तथा पाँचो इन्द्रियों के पाँच विषय, यही चौबीस तत्त्वों वाला क्षेत्र है। कुछ ज्ञानी लोग पाँच ज्ञान इन्द्रियों के विषयों के स्थान पर पाँच प्राण को चौबीस तत्तवों में गिनते हैं।

The field of activities is composed of the five great elements, the ego, the intellect, the unmanifest primordial matter (Mul Prakriti), the ten senses (five knowledge senses, five working/action senses), mind and the five objects of the senses. This is ksetra that consist of the 24 elements. Some writers have included five life breaths in place of five objects of the senses as part of the 24 elements (tatwas) of the body.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६ - **इच्छा द्वेषः सुखं दुखं, संघातश चेतना धृतिः।**
एतत्क्षेत्रं समासेन, सविकारमुदाहृतम् ॥

इच्छा, द्वेष, सुख दुख, संघात (शरीर), चेतना (प्राण शक्ति) और धृति (धैर्य धारण करना), इन विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया है।

Desire and aversion, happiness and misery, the body, consciousness (life-breath), and the will or firmness—all these comprise the field (Ksetra) and its modifications.

'इच्छा' - अमुक वस्तु, व्यक्ति परिस्थिति आदि मिले - ऐसी जो मन में चाहना रहती है, उस को इच्छा कहते ह्रै।

Iccha - This term denotes a personal longing for the acquisition of an object, a person or circumstance etc.

'द्वेषः' - कामना और अभिमान में बाधा लगने पर क्रोध पैदा होता है। अन्तःकरण में उस क्रोधका जो सूक्षम रूप रहता है, उसको द्वेष कहते हैं।

Dvesh – Unfulfillment of desire and hurt to one's pride leads to anger. That subtle form of anger is aversion.

'सुखम्' -अनुकूलता के आने पर मन में जो प्रसन्नता होती है, अर्थात् अनुकूल परिस्थिति जो मन को सुहाती है, उस को सुख कहते हैं।

Sukham -a feeling of pleasure aroused in the mind by the appearance of agreeable circumstances, is called sukham.

'दुखम्'- प्रतिकूलता के आने पर मन में जो हलचल होती है, अर्थात् प्रतिकूल

परिस्थिति जो मन को सुहाती नहीं है, उस को दुख कहते हैं ।

Dukham -Agony caused in the mind by disagreeable circumstances, is Dukh.

'सङ्घातः'- चौबीस तत्त्वों से बने हुए शरीर रूप समूह का नाम संङ्घातः है ।

Sanghatah – This term stands for a physical body consisting of 24 elements, described above in Shlok 5.

'चेतना'- चेतना नाम प्राण शक्ति का है, अर्थात् शरीर में जो प्राण चल रहें हैं उस का नाम चेतना है । चेतना में परिवर्तन होता रहता है, जैसे सात्त्विक-वृति आने पर प्राणशक्ति शान्त रहती है और चिन्ता, शोक, भय उद्वेग आदि होने पर प्राणशक्ति वैसी शान्त नहीं रहती, क्षुब्द हो जाती है ।

Chetna–The term refers to life breaths. It undergoes modifications. It remains. calm in Sattva mode, but is disturbed when a man is overwhelmed. with grief, worry and fear etc.

धृति - धृति नाम धारणशक्ति का है । यह धृति भी बदलती रहती है ।

Dhriti – Denotes firmness. It undergoes modifications. A man deviates from firmness in unfavourable circumstances.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७ - **अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।**
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रह ॥

अपने में श्रेष्टता का भाव न होना, दिखावटीपन न होना, अहिंसा, क्ष्मा, सरलता, गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, स्थिरता और मन का वश में होना ।

Absence of self-pride, freedom from hypocrisy, non-violence, forgiveness, straight-forwardness, service to the teacher (guru), purity of body and mind, steadfastness/firmness/calmness, and self-control.

विशेष बातें / Important Points

'अमानित्वम्' -अपने में मानीपन का अभाव होना । वर्ण, आश्रम, योग्यता, विद्या, गुण, पद आदि को ले कर अपने में श्रेष्टता का भाव होता है कि "मैं मान्य हूँ, आदरणीय हूँ", परन्तु ये भाव उत्पत्ति-विनाशशील शरीर के साथ तादात्म्य होने से ही होता है । अतः इस में जड़ता की ही मुख्यता रहती है । इस मानीपन के रहने से साधक को वास्तविक ज्ञान नहीं होता ।

'Amanitvam' – Absence of pride is known as Amanitvam. It is the superiority complex because of one's possessions of arts, virtues, wealth, ability etc., that

engender conceit or pride. One possesses a superiority complex because of his identity with the body. It means that he attaches too much importance to matters and so he cannot know the truth.

"अदम्भित्वम्" - दम्भ नाम दिखावटीपन का है । लोग हमारे में अच्छे गुण देखेंगे तो वे हमारा आदर करेंगे, हमें माला पहनायेंगे, हमारी पूजा करेंगे, हमें ऊँचे आसन पर बैठायेंगे आदि को लेकर, और अपने में वैसा गुण ना होने पर भी गुण दिखाना, अपने में गुण कम होने पर भी उसे बाहर से ज्यादा प्रकट करना- यह सब दम्भ है ।
"Adambhitvam" – Hypocrisy, means putting on a pretense or false appearance of virtue or goodness, for the sake of honor, prestige, and worship etc.

"आर्जवम्" - सरल-सीधेपन के भाव को आर्जवम् कहते हैं । साधक के शरीर, मन और वाणी में सरल-सीधापन होना चाहिये । कोई दिखावटीपन नहीं रहना चाहिये ।
"Arjavam" – It means straightforwardness of body, mind and speech. No sense of ornamentation in the body. Simplicity in living, natural straightforwardness in behavior and absence of arrogance.

"आचार्योपासनम्" - विद्या और सदुपदेश देनेवाले गुरू का नाम भी आचार्य है और उनकी सेवा से भी लाभ होता है, परन्तु यहाँ 'आचार्य' पद परमात्मतत्व को प्राप्त जीवनमुक्त महापुरुष का ही वाचक है । उन को दण्डवत् प्रणाम करना, उन का आदर-सत्कात करना, उन के शरीर को सुख पहुँचाने की शास्त्रविहित चेष्टा करना भी उनकी उपासना है । पर वास्तव में उनके सिद्धान्तों और भावों के अनुसार अपना जीवन बनाना ही उनकी सच्ची उपासना है ।
"Acharyopasanam" – A teacher who imparts knowledge and teaches good percepts, is called an acharya. If anyone serves such a type of teacher, he is benefitted. But here the term 'Acharya' denotes a liberated soul. Bowing to him, paying reverence to him, and serving him with body, mind, and speech, in order to make him happy – this is service to him; however, real service consists in translating his principles into practice.

शौचम् - बाहर-भीतर की शुद्धि का नाम 'शौचम्' है । जल, मिट्टि आदि से शरीर की शुद्धि होती है और दया, क्षमा, उदारताादि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है । शरीर बना ही ऐसे पदार्थों से है कि इसको चाहे जितना साफ करते रहें, यह अशुद्ध ही रहता है । इससे बार-बार अशुद्धि ही निकलती रहती है । अतः इसको बार-बार शुद्ध करते-करते ही इसकी वास्तविक अशुद्धि का ज्ञान होता है जिस से शरीर से अरुचि । (उपरामता) हो जाती है ।
वर्ण, आश्रम आदि के अनुसार सच्चाई के साथ धन का उपार्जन करना, पराया हक

न आने देना, झूठ-कपट आदि न करना, खान-पान में पवित्र चीजें काम में लाना आदि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है ।

"Saucham" – Saucham means external and internal purity. The body is purified by cleaning it with water and earth etc., while the mind is purified by having divine traits such as mercy, forgiveness, and generosity etc.
The body is made of filthy material. It may be cleaned again and again, yet it contains filth. By knowing the fact that it is full of filth, a striver becomes indifferent and detached to it. Earning money by truthful and honest means according to one's cast and stage of life, without laying claim to others property. etc., and purity of diet, purifies the mind.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ८ - **इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।**
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य का होना, अहंकार का भी न होना, और जनम, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों को बार-बार देखना ।

Dispassion towards the objects of senses and absence of egoism, constant perception of evil and misery in birth, death, old-age, and sickness.

मार्मिक बात - Important Point

ईन्द्रियार्थेषु वैराग्य - लोक-परलोक के शब्दादि समस्त विषयों में इन्द्रियों का खिंचाव न होना ही इन्द्रियों के बिषयों में राग-रहित होना है । इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध होने पर भी तथा शास्त्र के अनुसार जीवन-निर्वाह के लिये, इन्द्रियों द्वारा विषयों का सेवन करते हुए भी, साधक को विषयों में राग, आसक्ति, प्रियता नहीं होनी चाहिये ।

Indriyeartheshu Vairagyam - It denotes absence of attraction and attachment, for all the objects of senses of this world as well as the next, in the form of sound, touch, taste etc., that are enjoyed by senses. For the maintenance of his life, a striver should not have attachment and passion etc., with sense objects, even during physical contact with them.

अनहङ्कार एव च - अपने में श्रेष्ठता की भावना से ही अभिमान पैदा होता है । अभिमान तभी होता है, जब मनुष्य दूसरों की तरफ देखकर ये सोचता है कि वे

मेरी अपेक्षा तुच्छ हैं । जैसे गावों भर में एक ही करोड़पति हो, तो दूसरों को देखकर उसको करोड़पति होने का अभिमान होता है ।

'Anahankar ev cha' - Superiority complex leads to pride. So, a striver, instead of finding fault in others, should find fault in himself and try to get rid of his faults. The striver should realise that the same sole pervades all the bodies. So, he is in no way different from other persons. Hence, he should never compare himself with anyone else.

'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्' - जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगों के दुखरूप दोषों को बार-बार देखने का तात्पर्य है - जैसे आँवा में मटका पकता है, ऐसे ही जन्म से पहले माता के उदर में बच्चा जठराग्नि में पकता रहता है । माता के खाये हुए नमक, मिर्च आदि क्षार और तीखे पदार्थों से बच्चे के शरीर में जलन होती है । गर्भाशय में रहनेवाले सुक्षम जन्तु भी बच्चे को काटते रहते हैं । प्रसव के समय माता को जो पीड़ा होती है, उस का कोई अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता । वैसी ही पीड़ा उदर से बाहर आते समय बच्चे को होती है । इस तरह जन्म के दुखरूप दोषों का बार-बार बिचार करके इस विचार को दृढ़ करना की इस में केवल दुख ही दुख है ।

मृत्यु के समय जब प्राण शरीर से निकलते हैं, तब हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारते हों, ऐसी पीड़ा होती है । उम्र भर में कमाये हुए धन से, उम्र भर में रहे हुए मकान से और अपने परिवार से जब वियोग होता है, और फिर उनके मिलने की सम्भावना नहीं रहती, तब (ममता-आसक्ति के कारण) बड़ा भारी दुख होता है ।

जिस धन को कभी किसी को दिखाना नहीं चहता था, जिस धन को परिवार वालों से तिजोरी में छिपा-छिपा कर रखा था, उसकी चाभी परिवारवालों के हाथ में पड़ी देख कर मन में असह्य वेदना होती है । इस तरह मृत्यु के दुखरूप दोषों को बार-बार देखे ।

वृद्धावस्था में शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, जिस से चलने-फिरने, उठने-बैठने में कष्ट होता है । हर एक तरह का भोजन पचता नहीं । बड़ा होने के कारन परिवार से आदर चाहता है, पर कोई प्रयोजन न रहने से, घरवाले निरादर-अपमान करते हैं । तब मन में पहले की बात आती है कि मैने धन कमाया है, इन को पाला पोसा है, पर आज ये मेरा तिरसकार कर रहें हैं । इन बातों को लेकर बड़ा दुख होता है । इस तरह वृद्धावस्था के दुखरूप दोषों को बार-बार देखे ।

'Janammritiujaraveyadhidukhdoshanudarshanam' - As a pitcher is baked in a potter's kiln, a helpless child, burns within the womb of a mother. During the

process of birth, the mother, and the child, both, bear unbearable pain. A striver should constantly think of the problems of pain during the birth.
When a man under compulsion, has to leave a body, residence, and wealth etc., which he regarded as his own throughout his life that now he never hopes to regain, then due to attachment, he undergoes a lot of suffering. Moreover, when a man dies, he suffers as much pain as he suffers when thousands of scorpions sting him, all at once. Thus, a striver should perceive evil in death.
In old age the body and the limbs, become feeble and the man cannot move easily. He cannot digest food that he enjoyed in the past. The members of his family insult him. He is reduced to a helpless state. He is very much sad by memories of his glorious past. Thus, the problems of old age should be perceived.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ९ – **असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।**
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

आसक्ति रहित होना, पुत्र, स्त्री, घर आदि में घनिष्ठ सम्बन्ध न होना, और अनकूलता-प्रतिकूलता की प्राप्ति में चित का नित्य सम रहना ।

Non-attachment, non-identification of the self or absence of clinging to spouse, children, home and so on, and equanimity in all desirable and non-desirable happenings.

'असक्ति' – उत्पन्न होनेवाली (सांसारिक) वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि में जो प्रियता है, उसको 'आसक्ति' कहते हैं । सांसारिक वस्तुओं. व्यक्तियों आदि से सुख लेने की इच्छा से, सुख की आशा से और सुख के भोग से ही मनुष्य की उन में आसक्ति, प्रियता होती है । कारण कि मनुष्य को संयोंग के सिवाय सुख दीखता ही नहीं, इसलिये उनको संयोगजन्य सुख प्रिय लगता है । परन्तु वास्तविक सुख संयोग के वियोग से होता है (गीता ६-२३) । इसलिये साधक के लिये संसारिक आसक्ति का त्याग करना बहुत आवश्यक है ।

'Asakti' – Attachment to perishable worldly objects, persons, and circumstances etc., is Asakti. A man is attached to them to seek pleasure from them. He feels pleasure, while there is contact. But real joy reveals itself with termination of the contact (Gita 6/23). So, it is indispensable to renounce, attachment for the mundane for the striver.
Pleasure, which is derived from the contact of senses, with their objects, seems like nectar at first, but is like poison in the end (Gita 18/38). One who enjoys

pleasures born of contact, will bear sufferings. So, by thinking of their result, a striver, gets detached from them.

अनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु - पुत्र, स्त्री, घर, धन, जमीन, पशु आदि के साथ माना हुआ जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, गाढ़ मोह है, तादात्म्य है, मानी हुई एकता है, जिस के कारण शरीर पर भी असर पड़ता है, उस का नाम अभिष्वङ्गः है । ऐसी एकता से रहित होने के लिये यहाँ ' **अनभिष्वङ्गः**" पद आया है ।
जिनके साथ अपना घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई दे, उनकी सेवा करे, उनको सुख पहुँचाये पर उस से सुख लेने का उद्देश्य न रखे ।

Anabhisvangah – Close association with one's son, wife, house, wealth, and cattle etc., is really assumed. A man is so much identified with them that he regards their sickness and death etc., as his own. So, a man should not identify himself with them.
Render service to your kith and kin, without expecting any service or reward in return. If they take pleasure in servicing you, accept their service without deriving any pleasure out of it.

'नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु' - 'इष्ट' अर्थात् मन के अनुकूल वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति. घटना आदि के प्राप्त होने पर चित्त में राग, हर्ष, सुख, आदि विकार न हो, और 'अनिष्ट' अर्थात् मन के प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति आदि के प्राप्त होने पर चित्त में द्वेष, शोक, दुख, उद्वेग आदि विकार न हो, अर्थात् परिस्थिति चाहे जैसी भी क्यों न हो, चित्त में समता ही होनी चाहिये ।

Nityam cha Samchittwammisthanishtoppatikshu- Absence of joy and attachment in the favourable circumstance and absence of grief and aversion in unfavourable circumstances is equanimity (evenness of mind). In that state a striver remains unaffected by all desirable and undesirable happenings.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक १० - **मयि च अनन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।**
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

मुझ में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति का होना, एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव होना और जनसमुदाये में प्रीति का न होना ।

Exclusive devotion towards me with sole dependence on God. Inclination for solitary places and an aversion for mundane society.

'मयि च अनन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी' - अपना सम्बन्ध केवल भगवान् के साथ ही हो, दूसरे किसी के साथ किञ्चिमात्र भी अपना सम्बन्ध न हो -यही भगवान् में "**अव्यभिचारिणी भक्ति**" का होना है ।

'Total devotion only on God and His grace is called wholehearted discipline. Having consummate (firm) and unadulterated (pure) love for God is unswerving devotion (अविचल-भक्ति) to Him. It means that He is both the means and the end.

'विविक्तदेशसेवित्वम' - इसका मतलब है कि "मैं एकान्त में रह कर परमात्मतत्त्व का चिन्तन करूँ, भजन-स्मरण करूँ, सत्शास्त्रों का स्वध्याय करूँ, उस तत्त्व को गहरा उतर कर समझूँ, मेरी वृतियों में और मेरे साधन में कोई भी विघन्-बाधा न पड़े आदि ।

A lonely and a holy place, free from hustle, bustle and disturbances is suitable for meditation, adoration, study of sacred books and other spiritual practices. Therefore, a striver chooses to isolate himself away from disturbances.

"अरतिर्जनसंसदि" - साधारण मनुष्य समुदाय की संसारिक चर्चा से दूर केवल भगवदार्थ चर्चा सम्बन्धी लोगों से मिलना-झुलना ।

A striver should have no inclination for worldly affairs. If any discussion relates to spiritual subject, the desire to meet and hear the discussion is not “Aratirjanasansadhi” if it is to gain worldly pleasures and therefore, will be an obstacle to spiritual life. Only discussions that lead to God realisation, can be termed as “Aratirjanasansadhi.”

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ११ - **अध्यातमज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।**
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तंज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अध्यातम ज्ञान में नित्य-निरन्तर रहना, अर्थरूप परमात्मा को सब जगह देखना, (यह पूर्वोक्त बीस साधन समुदाय) तो ज्ञान है, और जो इस के विपरीत है, वह अज्ञान है - ऐसा कहा गया है ।

Constancy in spiritual knowledge or the knowledge of the supreme Spirit in seeing God everywhere as the object of true knowledge; and philosophical pursuit of the Absolute Truth—all these I declare to be knowledge, and what is contrary to it, I call ignorance.

मार्मिक बात –

'अध्यातमज्ञाननित्यत्वं ' – सम्पूर्ण शास्त्रों का तात्पर्य मनुष्य को परमात्मा की तरफ लगाने में, परमात्मप्राप्ति कराने में है, ऐसा निश्चय करनेके बाद परमात्मतत्त्व जितना समझ में आया है, उस का मनन करे। युक्ति-प्रयुक्ति से देखा जाय तो परमात्मतत्त्व भाव रूप से पहले भी था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। परन्तु संसार पहले भी नहीं था, आगे भी नहीं रहेगा तथा अभी भी प्रतिक्षण अभाव में जा रहा है। संसार की तो उत्पति और विनाश होता है, पर उस का जो आधार, प्रकाशक है, वह परमात्मतत्त्व नित्य-निरन्तर रहता है। उस परमात्मतत्त्व के सिवाय संसार की स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं। परमात्मा की सत्ता से ही संसारसत्तवाला दीखता है। इस प्रकार संसार की स्वतन्त्र सत्ता के अभाव का और परमात्मा की सत्ता का नित्य-निरन्तर मनन करते रहना **'अध्यातमज्ञाननित्यत्वं ' है।**

तत्त्वज्ञान का अर्थ है "**परमात्मा**" । उस परमात्मा का ही सब जगह दर्शन करना, उसका ही सब जगह अनुभाव करना **'तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम'** है।

श्लोक ७ से ११ तक कुल बीस (२०) साधन कहे गये हैं। यह देह अभिमान मिटाने वाले होने से और परमात्मतत्त्व की प्रप्ति में सहायक होने से "**ज्ञान**' नाम से कहे गये हैं। इन साधनों से विपरीत मानित्व, दम्भित्व, हिंसा आदि जितने भी दोष हें, वे सभी देहाभिमान बढ़ाने वाले होने से और परमात्मतत्त्व से विमुख करनेवाले होने से 'अज्ञान' नाम से कहे गये हैं।

Adhyatumgyannityatwam – All scriptures direct human beings towards God, with this point in view, a striver should dwell upon God to the best of his understanding. From arguments and counter-arguments, it is proved that God exists at all times, while the world does not exist at any time. Every moment it is decaying. The Self or the Supreme Spirit, is eternal and unperishable, while the world is transitory, perishable and is subject to modifications. The world actually has no existence of its own, besides the Lord. The world appears to exist in the light of the Self or God. Thus, to dwell upon the negation of independent existence of the world and ever existence of God, is called '**Adhyatumgyannityatwam'.**

Tattvagyan means God. Constantly beholding him pervading everywhere is seeing God, as an object of true knowledge. A striver should behold nothing else besides the Lord, as he pervades everywhere, everytime, every person, thing, incident, or circumstance. To have such a constant perception is '**Taatvagyanatdarshanum**'.

The twenty virtues mentioned in shloks 7 to 11 are all conducive to God-realisation by wiping out a striver's identification with the body. Hence these have been named "true knowledge". The opposites of these virtues are – pride, hypocrisy, and violence etc., Such wicked propensities are conducive to disinclination for God-realisation, as well as identification of the self, with a body. So, they are named 'ignorance.'

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यज् ज्ञात्वाऽमृतम् अश्नुते ।
अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तन् नासद् उच्यते ॥१२॥

मैं तुम्हें जानने योग्य वस्तु अर्थात् परमात्मा के बारे में अच्छी तरह कहूंगा, जिसे जानकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है. वह अनादि परब्रह्म परमात्मा न सत् (अर्थात् अक्षर या अविनाशी) है, न असत् (अर्थात् क्षर या नाशवान) है. (वह इन दोनों से परे, अक्षरातीत, है) (६.१६, ११.३७, १५.१८ भी देखें) (१३.१२)

BG 13.12: I shall now reveal to you that which ought to be known, and by knowing which, one attains immortality. It is the beginningless Brahman, which lies beyond existence and non-existence.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल् लोके सर्वम् आवृत्य तिष्ठति ॥१३॥

उसके हाथ और पैर सब जगह हैं; उसके नेत्र, सिर, मुख और कान भी सब जगह हैं; क्योंकि वह सर्वव्यापी है. (ऋ.वे. १०.८१.०३, श्वे.उ. ३.१६ भी देखें) (१३.१३)

BG 13.13: Everywhere are His hands and feet, eyes, heads, and faces. His ears too are in all places, for He pervades everything in the universe.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच् चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

वह (प्राकृत) इन्द्रियों के बिना भी (सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा) सभी विषयों का अनुभव करता है. सम्पूर्ण संसार का पालन-पोषण करते हुए भी आसक्तिरहित है तथा प्रकृति के गुणों से रहित

होते हुए भी (जीवरूप धारण कर) गुणों का भोक्ता है. (१३.१४)

BG 13.14: Though He perceives all sense-objects, yet He is devoid of the senses. He is unattached to everything, and yet He is the sustainer of all. Although He is without attributes, yet He is the enjoyer of the three modes of material nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

बहिर् अन्तश्च भूतानाम् अचरं चरम् एव च ।
सूक्ष्मत्वात् तद् अविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥

सभी चर और अचर भूतों के बाहर और भीतर भी वही है. सूक्ष्म होने के कारण वह (मनुष्य की इन्द्रियों द्वारा देखा या) जाना नहीं जा सकता है तथा वह (सर्वव्यापी होने के कारण) अत्यन्त दूर भी है और समीप भी. (१३.१५)

BG 13.15: **He exists outside and inside all living beings, those that are moving and not moving. He is subtle, and hence, He is incomprehensible. He is very far, but He is also very near.**

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तम् इव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

वह एक होते हुए भी प्राणीरूप में अनेक दिखाई देता है. वह ज्ञान का विषय है तथा सभी भूतों को उत्पन्न करने वाला, पालन-पोषण करने वाला और संहार कर्ता भी वही है. (११.१३, १८.२० भी देखें) (१३.१६)

BG 13.16: He is indivisible, yet He appears to be divided amongst living beings. Know the Supreme Entity to be the Sustainer, Annihilator, and Creator of all beings.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक १७ - **ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।**
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं, हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

वे परमात्मा सम्पूर्ण ज्योतियों के भी ज्योति और अज्ञान से अत्यन्त परे कहे गये हैं । वे ज्ञान स्वरूप, जाननेयोग्य, ज्ञान से प्राप्त करनेयोग्य और सब के हृदय में विराजमान हैं ।

परमात्मा को अपने हृदय में अनुभव करने का उपाय हैः

१. मनुष्य हर एक विषय को जानता है तो उस जानकारी में सत् और असत् -ये दोनो रहते हैं । इन दोनो का विभाग करनेके लिये साधक यह अनुभव करे कि मेरी

जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और बालपन, जवानी, बुढ़ापा आदि अवस्थाएँ तो भिन-भिन हुई पर मैं एक रहा । सुखदाई-दुखदाई, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आयीं और चली गयीं, पर उन में मैं एक ही रहा । देश, काल, वस्तु व्यक्ति आदिका संयोग-वियोग हुआ, पर उनमें भी मैं एक ही रहा । तात्पर्य यह हुआ कि अवस्थाएँ, परिस्थितियाँ सँयोग-वियोग तो भिन्न-भिन्न (तरह-तरह) के हुये, पर उन सब में जो एक ही रहा है, भिन्न-भिन्न नहीं हुआ है, उस का (उन सबसे अलग करके) अनुभव करे । ऐसा करने से जो सब के हृदय में विराजमान है, उसका अनुभव हो जाएगा, क्योंकि यह स्वयं परमात्मा से अभिन्न है ।

२. जैसे अत्यन्त भूखा अन्नके बिना और अत्यन्त प्यासा जल के बिना नही रह सकता, ऐसे ही उस परमात्मा के बिना रह नहीं सके, बेचैन हो जाय । उसके बिना न भूख लगे , न प्यास लगे और न नींद आये । उस परमात्माके सिवाये और कहीं वृति जाय ही नहीं । इस तरह परमात्मा को पाने के लिये व्यकुल हो जाय तो अपने हृदय में उस परमात्मा का अनुभव हो जायगा ।

He is the source of light in all luminaries and is entirely beyond the darkness of ignorance. He is knowledge, the object of knowledge, and the goal of knowledge. He dwells within the hearts of all living beings.

How to realise the presence of God in the heart?

1. A striver should realise the difference between, the real and the unreal. He should know that there are different states, such as wakefulness, sleep, and sound sleep; Childhood, youth and old age, but he himself remains the same. Pleasant and painful, favourable and unfavourable circumstances appear and disappear, but he remains the same. There is contact with things, persons etc., and then there is separation from these, but he remains the same. It means that he is different from all of them. By knowing this truth in reality, he will realise the presence of God in his heart, because he himself, being a fraction of the Lord, has identity with him.

2. As a starving person, becomes uneasy without food and a thirsty man without water, a striver, should become uneasy for God-realisation. Then he will realise that, He (GOD) is seated in his heart. By this realisation, he will understand that God is all-pervading. This is true realisation.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

इस प्रकार (मेरे द्वारा) सृष्टि, तत्त्वज्ञान और जानने योग्य परमात्मा के विषय में संक्षेप से कहा गया. इसे तत्त्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त करता है. (१३.१८)

BG 13.18: I have thus revealed to you the nature of the field, the meaning of knowledge, and the object of knowledge. Only My devotees can understand this in reality, and by doing so, they attain My divine nature.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्य् अनादी उभाव् अपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिर् उच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुर् उच्यते ॥२०॥

प्रकृति और पुरुष, इन दोनों को तुम अनादि जानो. सभी विभूतियां और गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं. शरीर और इन्द्रियों की उत्पत्ति भी प्रकृति से होती है और सुख-दुःख का अनुभव पुरुष (अर्थात् चेतन शक्ति - **conciousness from Aatma**) के द्वारा होता है. (१३.१९-२०)

BG 13.19: Know that *prakṛiti* (material nature) and *puruṣh* (the individual souls) are both beginningless. Also know that all transformations of the body and the three modes of nature are produced by material energy.

BG 13.20: In the matter of creation, the material energy is responsible for cause and effect; in the matter of experiencing happiness and distress, the individual soul is declared responsible.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

प्रकृति के साथ मिलकर पुरुष प्रकृति के गुणों को भोगता है. प्रकृति के गुणों से संयोग के कारण ही पुरुष (जीव बनकर) अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेता है. (१३.२१)

BG 13.21: When the *puruṣh* (individual soul) seated in *prakṛiti* (the material energy) desires to enjoy the three *guṇas*, attachment to them becomes the cause of its birth in superior and inferior wombs.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २२ - **उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।**
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

यह आत्मा - शरीर के साथ सम्बन्ध रखने से **'उपद्रष्टा'**, उसके साथ मिल कर सम्मति-अनुमति देने से **'अनुमन्ता'**, अपने को उसका भरण-पोषण करनेवाला मानने से "**भर्ता,** उस के संग से सुख-दुख भोगने से "**भोक्ता**", और अपने को उसका स्वामी मानने से "**महेश्वर**" बन जाता है । परन्तु स्वरूप से यह पुरुष "**परमात्मा**" इस नाम से कहा जाता है । यह इस देह में रहता हुआ भी देह से सर्वथा सम्बन्ध-रहित ही है ।

Within the body also resides the Supreme Lord. He is said to be the Witness, the Permitter, the Supporter, Transcendental Enjoyer, the ultimate Controller, and the *Paramātmā* (Supreme Soul).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य यथार्थरूप से जान लेता है, वह सभी कर्तव्यकर्म करता हुआ भी पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता है. (१३.२३)

BG 13.23: Those who understand the truth about Supreme Soul, the individual soul, material nature, and the interaction of the three modes of nature will not take birth here again. They will be liberated regardless of their present condition.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिद् आत्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

कोई साधक ध्यान के अभ्यास से, कोई सांख्ययोग के द्वारा तथा कोई कर्मयोग के द्वारा (शुद्ध किये हुए) मन और बुद्धि से अपने अन्तःकरण में परमात्मा का दर्शन करता है. (१३.२४)

BG 13.24: Some try to perceive the Supreme Soul within their hearts through meditation, and others try to do so through the cultivation of knowledge, while still others strive to attain that realization by the path of action.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अन्ये त्व् एवम् अजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्य् एव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

परन्तु, दूसरे परमात्मा को इस प्रकार (ध्यानयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग आदि द्वारा) नहीं जानते. वे केवल शास्त्र और महापुरुषों के वचनों के अनुसार उपासना करते हैं. वे भी मृत्युरूपी संसार सागर को श्रद्धारूपी नौका द्वारा निस्संदेह पार कर जाते हैं. (१३.२५)

BG 13.25: There are still others who are unaware of these spiritual paths, but they hear from others and begin worshipping the Supreme Lord. By such devotion to hearing from saints, they too can gradually cross over the ocean of birth and death.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यावत् संजायते किंचित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद् विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन, चर और अचर जितने भी प्राणी पैदा होते हैं, उन सबको तुम प्रकृति और पुरुष (अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ) के संयोग से ही उत्पन्न हुए जानो. (७.०६ भी देखें) (१३.२६)

BG 13.26: O best of the Bharatas, whatever moving or unmoving being you see in existence, know it to be a combination of the field of activities and the knower of the field.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्व् अविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

जो मनुष्य अविनाशी परमेश्वर को ही समस्त नश्वर प्राणियों में समान भाव से स्थित देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७)

BG 13.27: They alone truly see, who perceive the *Paramātmā* (Supreme Soul) accompanying the soul in all beings, and who understand both to be imperishable in this perishable body.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम् ।
न हिनस्त्य् आत्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

क्योंकि सब में स्थित एक ही परमेश्वर को देखने वाला मनुष्य अपने-आप अपनी ही (अर्थात् किसी की भी) हिंसा नहीं करता है, इससे वह परमगति को प्राप्त होता है. (१३.२८)

BG 13.28: Those, who see God as the Supreme Soul equally present everywhere and in all living beings, do not degrade themselves by their mind. Thereby, they reach the supreme destination.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानम् अकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

जो मनुष्य सभी कर्मों को प्रकृति के गुणों द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और अपने आपको (तथा आत्मा को भी) अकर्ता मानता है, वास्तव में वही ज्ञानी है. (३.२७, ५.०९, १४.१९ भी देखें) (१३.२९)

BG 13.29: They alone truly see who understand that all actions (of the body) are performed by material nature, while the embodied soul actually does nothing.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यदा भूतपृथग्भावम् एकस्थम् अनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

जिस क्षण साधक सभी प्राणियों को तथा उनके अलग-अलग विचारों को एकमात्र परब्रह्म परमात्मा से ही उत्पन्न समझ जाता है, उसी क्षण वह परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है. (१३.३०).

BG 13.30: When they see the diverse variety of living beings situated in the same material nature, and understand all of them to be born from it, they attain the realization of the Brahman.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अनादित्वान् निर्गुणत्वात् परमात्मायम् अव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

हे अर्जुन, अविनाशी परमात्मा — अनादि और विकार रहित होने के कारण — शरीर में वास करता हुआ भी न कुछ करता है और न देह से लिप्त होता है. (१३.३१)

BG 13.31: The Supreme Soul is imperishable, without beginning, and devoid of any material qualities, O son of Kunti. Although situated within the body, It neither acts, nor is It tainted by material energy.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्याद् आकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

जैसे सर्वव्यापी आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण किसी विकार से दूषित नहीं होता, वैसे ही (सर्वव्यापी) आत्मा सभी देह के अन्दर रहते हुए भी (देह के) विकारों से दूषित नहीं होता. (१३.३२)

BG 13.32: Space holds everything within it, but being subtle, does not get contaminated by what it holds. Similarly, though its consciousness pervades the body, the soul is not affected by the attributes of the body.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यथा प्रकाशयत्य् एकः कृत्स्नं लोकम् इमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

हे अर्जुन, जैसे एक ही सूर्य सारे जगत को प्रकाश देता है, वैसे ही एक परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चेतना प्रदान करता है. (१३.३३)

BG 13.33: Just as one sun illumines the entire solar system, so does the individual soul illumine the entire body (with consciousness).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर् एवम् अन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर् यान्ति ते परम् ॥३४॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञान द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा जीव के प्रकृति के विकारों से मुक्त होने के उपाय को जो लोग जान लेते हैं, वे परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं. (१३.३४)

BG 13.34: Those who perceive with the eyes of knowledge the difference between the body and the knower of the body, and the process of release from material nature, attain the supreme destination.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

गीता दर्पण के तेरहवे अध्याय का तात्पर्य :-

संसार में एक परमात्मतत्व ही जानने योग है । उस को अवश्य जान लेना चाहिये । उस को तत्व से जानने पर जाननेवाले की परमात्मतत्व के साथ अभिन्नता हो जाती है ।

जिस परमात्मा को जानने से अमरता की प्राप्ति हो जाती है, उस परमात्मा के हाथ, पैर, सिर, नेत्र, कान, सब जगह है । वह सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित होने पर भी सम्पूर्ण विषयों को प्रकाशित करता है । सम्पूर्ण गुणों से रहित होने पर भी सम्पूर्ण गुणों का भोगता है, और आसक्ति रहित होने पर भी सब का पालन-पोषण करता है । वह सम्पूर्ण प्राणियों के बाहर भी है और भीतर भी है,तथा चर-अचर प्राणियों के स्वरूप में भी वही है ।

सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त रहता हुआ भी वह विभागरहित है । वह सम्पूर्ण ज्ञानों का प्रकाशक है । वह सम्पूर्ण विषम प्राणियों में सम रहता है, गतिशील प्राणियों में गतिरहित रहता है, नष्ट होते हुये प्राणियों में अविनाशी रहता है । इस तरह, परमात्मा को यथार्थ जान लेने पर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

Gita Essence in English – Chapter 13

In this world, the only important thing to be remembered or realised is the "Supreme Being" the GOD. Hence one should know and realise him. When one knows or realises him (the GOD), he becomes one with him.
The God, by knowing whom, one attains immortality, has hands, feet, eyes, ears everywhere. Although God is devoid of all senses, he reveals all the desires.

Even though he is devoid of all qualities, he enjoys them, and even having no attachment with the material world, he nurtures everyone.

He is both inside and outside in all living beings and he is also in the form of all the four kinds of living beings in this world e.g. born from eggs, womb, sweat and soil.
He is the publisher of complete knowledge. He is equanimous among all the living beings. He remains motionless in mobile creatures and is imperishable in perishable creatures.
In this way, by knowing God as it is, one attains Him.

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवतगीतासूपरिष्सु ब्रह्मविद्यां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्र-क्षत्रज्ञविभागयोगो नाम १३ ऽध्याय ॥